# Golden Research Thoughts

**International Recognized Multidisciplinary Research Journal**

ISSN : 2231-5063 Impact Factor : 3.4052(UIF) Volume -5 | Issue - 9 | March - 2016


## देश विदेश में रामकथा का विकास

**कृष्णचन्द रल्हाण**

पूर्व कुलसचिव , कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र।


**प्रस्तावना :-**

रामकाव्य परम्परा बहुत प्राचीन है। 'वाल्मीकि रामायण' की परवर्ती अनेक कवियों ने भारतीय भाषा में रामकाव्य की रचना की है। 'रामचरितमानस' के उद्धरण और विवरण तो प्राय: दिए जाते हैं परन्तु उस रामकाव्य की परम्परा की ओर भी दृष्टिपात करना अब अनिवार्य हो गया है, जिसने भारतीय जीवन के विभिन्न सोपानों पर युगानुकुल उत्तरदायित्वों का वहन किया। यह आकस्मिक नहीं है कि जब भी भाषा, विचार, सम्प्रदाय अथवा संस्कृति में उल्लेखनीय अथवा मौलिक परिवर्तन हुआ है, राम का चरित्र ही भारतीय जन का सहयोगी, संरक्षक और मार्गदर्शक बनकर उपस्थित हुआ है। भारतीय लोकमानस विभिन्न जटिलताओं और विषमताओं से जूझते हुए भी राम के चरित्र को सदियों से अपने हृदय में आत्मसात् किए हुए उससे स्फूर्ति और प्रेरणा पाता रहा है। संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश एवं आधुनिक भारतीय भाषाओं में राम के चरित्र पर ही प्रथम महाकाव्य का लिखा जाना इस बात का परिचायक है कि राम के चरित्र के विभिन्न युगों में युगान्तर उपस्थित किया है।

गोस्वामी तुलसीदास ने मानस की रचना के प्रारम्भ में ही एक प्रतिज्ञा की थी–

''नाना पुराण निगमागम संमतं
यद्रमायणे निगदितं क्वचिदन्यतोपि।
स्वांत: सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा
भाषा निबंध मतिमंजुल मातनोति।।''

अर्थात् मैं जिस कथा को विस्तार देने जा रहा हूँ वह नाना पुराणों, निगमों एवं आगमों से सम्मत है। यही नहीं अनेक विद्वानों के उद्धरणों से भी इस बात की पुष्टि होती है कि तुलसी ने अपने पूर्ववर्ती राम-साहित्य से अपनी सामग्री समेटी है, परन्तु इसके साथ ही स्वीकार करना होगा कि तुलसी ने अनेक सूत्रों से कथा लेते हुए भी इसे सजाने और संवारने में बड़ा श्रम किया। 'मानस' के राम में जो शील, शक्ति और सौन्दर्य का अनूठा संगम है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। युगों तक अपना प्रभाव छोड़ने वाली रचना 'रामचरितमानस' को सजाने, संवारने एवं निखारने में तुलसी को बहुत बड़ा श्रेय प्राप्त है। डॉ० भागीरथ मिश्र के अनुसार- तुलसी का यह कार्य उतने ही महत्त्व का है जितना कृष्ण भक्त कवियों का। तुलसी की विशेषता केवल इसी बात में बढ़ जाती है कि इन कृष्णभक्त कवियों को कृष्ण के चरित्र के लिए भागवत का उत्कृष्ट आधार प्राप्त था, जबकि तुलसी को वैसा पूर्ण आधार प्राप्त न था।

रामकाव्य की परम्परा और इसकी प्राचीनता का अनुसन्धान करते हुए विद्वान् वेदों तक पहुंच जाते हैं जो ग्राह्य नहीं हैं, राम उत्तरवैदिक काल के महापुरुष हैं, वैदिककाल के नहीं। वैदिक साहित्य के अन्तर्गत राम शब्द कहीं-कहीं मिलता है, परन्तु उसका अर्थ दशरथ के पुत्र राम से नहीं, वरन् अन्य व्यक्तियों से है। इस बात की पुष्टि के लिए यहाँ दो तथ्यों का विवरण अप्रासंगिक न होगा। पहली बात तो यह कि राम का उल्लेख वेदों में नहीं है, यदि राम का आविर्भाव वेदों से पहले हो गया होता तो कोई कारण नहीं बनता कि उनका चरित्र वेदों में न पाया जाए। दूसरी बात यह कि जैसा कि 'वाल्मीकि-रामायण' तथा अन्य रामकथाओं से विदित है कि राम ने अपनी प्रारम्भिक अवस्था में वेदों का अध्ययन किया, यदि वे स्वयं वैदिककाल के महापुरुष थे तो वेदों मं उनके चरित्र का विवरण कैसे प्राप्त हो सकता था। अत: रामकथा की परम्परा को वैदिक साहित्य में ढूंढना व्यर्थ है।

यह निर्विवाद रूप से स्वीकार किया जाता है कि 'वाल्मीकि रामायण' ही राम के चरित्र को महत्त्व प्रदान करने वाला आदि ग्रन्थ है। बाद्धजातक कथाओं को भी कुछ लोग रामायण की कथा का मूल मानते हैं। बौद्धजातक कथाओं में तीन कथाएँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं- एक दशरथजातक, अनामकंजातकम् तथा दशरथकथानम्। इनके द्वारा राम का अति प्राचीन होना प्रामाणित होता है। यह पसिद्धि रामायण के द्वारा ही सम्भावित जान पड़ती है, किन्तु प्रश्न यह पैदा होता है कि यदि रामायण की कथा उस समय इतनी लोक-प्रचलित थी तो वह इन कथाओं में इतनी अनाकर्षक तथा अमर्यादित रूप से क्यों दिखाई पड़ती है। इसका सबसे महत्त्वपूर्ण कारण जो कि डॉ० भागीरथ मिश्र ने भी स्वीकार किया है कि ये सारी कथाएँ भारतवर्ष से बाहर की हैं और अपने दार्शनिक सिद्धान्तों से अनुप्राणित भी। दशरथ जातक कथा 'जातक कट्टवण्पना' नामक पुस्तक में मिलती है जो पाँचवीं शताब्दी की एक सिंहली पुस्तक का अनुवाद है। सिंहली पुस्तक होने के कारण इस पर अहिंसापरक बौद्धदृष्टिकोण का प्रभाव है जिसके फलस्वरूप कथानक में राम-रावण युद्ध का अभाव है। सीता राम की बहन है और फिर भी इसका विवाह राम से होता है जो कि अनार्य संस्कृति क प्रभावस्वरूप संभावित जान पड़ता है। स्वीकार करना होगा कि ये सारी कथाएँ 'वाल्मीकि-रामायण' के मुख्य प्रभाव क्षेत्र से हटकर लिखी जा रही थी, अत: उन पर तत्कालीन लोकसंस्कृति का, उसके रीति-रिवाजों का प्रभाव था।

चीनी स्रोत से हमें दो और कथाएँ प्राप्त होती हैं, जिनमें अनामकं जातकम् और दशरथ कथानक प्रसिद्ध हैं। इनमें भी रामकथा बौद्धदर्शन से प्रभावित है और 'रामायण' और 'महाभारत' की मुख्यकथा का प्रभाव उस पर नहीं दीखता। अहिंसापरक बौद्धकथाओं के समानान्तर जा जैन रामकथाएँ मिलती हैं, वे अधिक विस्तृत तथा व्यवस्थित हैं। जैन मतानुसार यद्यपि उनके संकलन और आकलन में हेर-फेर किए गए हैं पर कुछ नामों और घटनाओं को छोड़ देने पर शेष में 'रामायण' की कथा का पूरा विस्तार प्राप्त होता है।

जैन रामकथाओं में ऐसे अनेक ग्रन्थ हैं, जिनमें राम के चरित्र के महत्त्व को प्रतिपादित किया गया है, परन्तु दृष्टिकोण यहाँ भी जैन धर्म का ही रहा है। जैन रामकथाओं में सबसे प्रमुख विमल सूरिकृत 'पद्मचरितम्' है। इस ग्रन्थ की रचना वीर संवत् 530 में हुई थी। रामचन्द्र जी को जैनाचार्य पद्म नाम से पुकारते हैं, यही कारण है कि 'पद्मचरितम्' संस्कृत के 'पऊम चरिउ' का रूप है। विमलसूरि कृत इस ग्रन्थ का महत्त्व इस मायने में भी है कि यह तत्कालीन साहित्यिक, सामाजिक, ऐतिहासिक एवं भाषा शास्त्रीय समस्याओं का भी लेखा-जोखा प्रस्तुत कर देता है। मूल रूप से यह ग्रन्थ प्राकृत में है, जिसका संस्कृत अनुवाद आचार्य जिनसेन ने 'पद्मपुराण' नाम से किया। रामकथा को प्रस्तुत करने वाला दूसरा ग्रन्थ

'वासुदेव हिण्डी' है जो कि गुणाढ्य की वृहद कथा के आधार पर लिखा गया है। भाषा इसकी भी प्राकृत है तथा यह ग्रन्थ दो खण्डों में विभाजित है। पहले की भाषा जैन प्राकृत है तथा दूसरे की मागधी शौर शैनी। इनका रचनाक्रम भी क्रमशः छठी तथा सातवीं शताब्दी जान पड़ता है। ग्रन्थ में रामकथा को प्रमुख मानते हुए भी कृष्णकथा को विस्तार दिया गया है।

नौवीं शताब्दी में हमें एक और रामकथा विषयक ग्रन्थ मिलता है जो शीलाचार्यकृत् 'चउपराण्महापुरिष चरियम्' है। प्रस्तुत ग्रन्थ की कथा विमलसूरि की परम्परा में होते हुए भी 'वाल्मीकि-रामायण' से अधिक प्रभावित जान पड़ती है। दसवीं शताब्दी में एक और महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ रामकथा सम्बन्धी मिलता है, जिसमें 23000 छन्दों में रामायण की कथा का विस्तृत वर्णन किया गया है। इस ग्रन्थ का नाम 'कहाबली' है तथा यह आचार्य भरतेश्वरसूरि द्वारा प्रणीत है। प्राकृत के अतिरिक्त संस्कृत में भी रामकाव्य की एक समृद्ध परिपाटी के दर्शन होते हैं जिनमें रामकथा का खण्डशः एवं विस्तार से वर्णन मिलता है। इनमें आठवीं शताब्दी में लिखा गया पहला ग्रन्थ रविषेणकृत् 'पद्मचरित' तथा नौवीं शताब्दी में रचित गुणभद्रकृत् 'उत्तरपुराण' उल्लेखनीय हैं। दसवीं शताब्दी में विमलसूरि की परम्परा में 'वाल्मीकि-रामायण' से प्रभावित हरिषेण कथाकोष में 'रामायण कथानकम्' तथा 'सीताकथानकम्' प्राप्त होते हैं। बारहवीं शताब्दी में 'त्रिषष्टि शलाका पुरुषचरितम्' के अन्तर्गत रामायण की कथा प्राप्त होती है, जिसे जैनाचार्य हेमचन्द्र ने लिखा था। सोलहवीं शताब्दी में पद्मदेव विजयगणि ने 'रामचरित' लिखा और लगभग इसी दौर में सोमसेनकृत् 'रामचरित' का भी प्रणयन हुआ। जैन कथाओं में राम के चरित्र का विकास ढूंढने पर हमें रामकाव्य की दो भिन्न परम्पराओं के निदर्शन होते हैं। एक परम्परा के अनुसार विमलसूरि थे तो दूसरी के गुणभद्र। गुणभद्रकृत् 'उत्तरपुराण' नौवीं शताब्दी में लिखा गया एक उत्कृष्ट ग्रन्थ है, जिसमें रचनाकार विमलसूरि और वाल्मीकि की परम्परा से अलग हटकर एक नई लीक तैयार करता है।

अपभ्रंश के दो जैन राम-साहित्य प्रमुख हैं जिनमें पहला स्वयम्भूकृत् 'पद्म चरिउ' तथा दूसरी पुष्पदन्तकृत् 'महापुराण'। इन दोनों ग्रन्थों का रचनाकाल आठवीं से दसवीं शताब्दी है। इन जैन रामकथाओं की बहुत-सी बातें जैनेत्तर साहित्य से भिन्न होते हुए भी अधिक प्रामाणिक और विश्वसनीय हैं। उदाहरण के लिए स्वयम्भूकृत 'पउमचरिउ' को यदि देखा जाए तो उसमें रावण को दसानन इसलिए नहीं कहा गया कि उसके दस मुख थे, बल्कि उसका एक अन्य सुसंगत कारण दिया गया है। रावण बचपन में खेलते-खेलते एक भण्डार में पहुँच गया और उसे नौ मणियों से जड़ा हुआ एक हार मिला। रावण ने उस हार को पहन लिया और उसकी प्रत्येक मणि में उसके चेहरे का प्रतिबिम्ब झलकने के कारण ही उसके और भी नौ मुख दीखने लगे। स्वयंभू की यह कल्पना यथार्थवाद के अधिक करीब है और भारतीय यथार्थवाद की उस परम्परा का द्योतन करती है, जिसकी प्रतिष्ठा महाकवि कालिदास ने की थी। यथार्थ का अर्थ समाज की वास्तविक स्थिति का ज्यों का त्यों चित्रण कर देना नहीं होता है। यह 'यथातथ्यवाद' या 'फोटोग्राफिक रियलिज़्म' हो जाएगा। वस्तुतः समाज और साहित्य के बीच कार्य-कारण का सम्बन्ध नहीं होता, यह तो विधेयवादियों की एकरूपवादी साज़िश है। साहित्य के द्वन्द्वात्मक सम्बन्धों के खिलाफ साहित्य में कल्पना को नकारकर यथार्थवाद का प्रणयन करना अति यथार्थवाद (सररियलिज़्म अथवा प्रकृतवाद, नेचुरलिज़्म) को जन्म देना है। मगर, हाँ देखना यह चाहिए कि काव्य में निहित कवि की कल्पना यथार्थवाद की धारणा को कितनी आगे तक पुष्पित और पल्लवित करती है। यदि जीवन की सच्ची अनुभूति यथार्थ और उसकी कलात्मक अभिव्यक्ति यथार्थवाद है, तो हमें यह स्वीकार करना होगा कि कालिदास का मेघदूत कल्पना में भी यथार्थ के अधिक करीब है, जहाँ कालिदास अपने मेघ से कहते हैं कि ऐ मेघ तू मालवा जनपद के ऊपर से जब गुज़रेगा तो थोड़ी देर के लिए रुककर जुते हुए खेतों में काम करती हुई मालिनियों के पसीने को अपनी ठण्डी हवा के ब्यार से पोंछ देना। स्वयंभू इसी परम्परा के अवदूत हैं। उनकी कल्पना कथा को जीवन्तता ही अधिक प्रदान करती है तथा अतिशयोक्तिपूर्ण भ्रांतियों से बचाती है। स्वयंभूकृत 'पउमचरिउ' और पुष्पदन्तकृत 'महापुराण' में कई भिन्नताएँ हैं-

| पदम चरित्र | महापुराण |
|---|---|
| 1. भरत कैकई के पुत्र हैं। | 1. लक्ष्मण कैकई के पुत्र हैं। |
| 2. राम का विवाह एक ही हुआ था। | 2. राम का विवाह आठ हुआ था। |
| 3. अग्निपरीक्षा का प्रसंग है। | 3. अग्निपरीक्षा का प्रसंग नहीं है। |
| (अर्थात् इस बात की पुष्टि हो जाती है कि इसमें रचनाकार स्पष्ट ही वाल्मीकि से प्रभावित रहा है)। | (स्वीकार करना होगा कि 'महापुराण' में उन) लोकविरोधी तत्त्वों का प्रतिकार कर तुलसी के लिए मार्ग प्रदर्शित किया गया है जो किसी भी स्वस्थ और उन्नत समाज व्यवस्था के लिए ग्राह्य नहीं है)। |

वस्तुत: जैन रामकथाएँ अपने धर्म की मान्यताओं के अनुकूल ही रामकथा को एक नया मोड़ भी प्रदान करती हैं। राम के वन गमन पर कुछ जैन रामकाव्यों में दशरथ की मृत्यु नहीं होती, बल्कि वे जैनधर्म अंगीकार कर संन्यास ले लेते हैं। इसी प्रकार वन गमन से लेकर अन्त तक राम को जैन ऋषि-मुनियों से सहायता प्राप्त होती है। यहाँ शूर्पणखा खरदूषण की पत्नी के रूप में हमारे सम्मुख आती है। हम जानते हैं कि तुलसी ने अपनी कथा को अनेक ढंग से मांजा और संवारा है। परम्परा और इतिहास में सब कुछ सार्थक, उपयोगी और प्रगतिशील नहों होता, यह तुलसी की इतिहास-दृष्टि थी, जिसने अनेक कथा-प्रसंगों को अपनाया और अनेक को लोकविरुद्ध समझकर छोड़ दिया। हम यहाँ केवल एक प्रसंग को लेकर अपनी बात की पुष्टि करने का सीमित प्रयास करेंगे। 'मानस' का रचनाकार आदर्श और मर्यादा के प्रति अधिक जागरूक रहा और इसीलिए जहाँ कहीं भी घटनाओं का स्वरूप अमर्यादित अथवा अश्लील दिखलाई पड़ा है, वहाँ तुरन्त ही या तो उस भाग को मूलकथा से विछिन्न कर दिया गया है अथवा उसमें परिष्कार क र दिया गया है। उदाहरण के लिए जयन्त और सीता के प्रसंग को ही लें- 'वाल्मीकि रामायण' में जयन्त सीता के स्तन में चोंच मारता है, किन्तु अध्यात्म तथा आनन्द-रामायणों में वह सीता के चरण में चोंच मारता है। मर्यादित तुलसी के लिए पहले की अपेक्षा दूसरे को ग्रहण करना अधिक समोचीन था। इसीलिए उन्होंने लिखा- 'सीता चरण चोंच हति भागा'। इसी तरह शूर्पणखा प्रसंग है, 'अध्यात्म-रामायण' में शूर्पणखा राम से संभोग का प्रस्ताव करती है। मानसकार ने इसे परिष्कृत रूप दिया कि वह विवाह करना चाहती है। संस्कृत साहित्य में निहित रामकाव्य की परम्परा को तीन रूपों में विभाजित कर यदि देखा जाए तो रामकथा के विकास को समझने में अधिक आसानी होगी। यह तीन रूप हैं- पुराण साहित्य में रामकाव्य, प्रबन्धकाव्य में रामकाव्य तथा नाट्यसाहित्य में रामकाव्य। यद्यपि रामकथा के आदिग्रन्थ 'वाल्मीकि-रामायण' की कथा का पूर्णस्वरूप इन ग्रन्थों में नहीं मिलता पर फिर भी यह स्वीकार करना होगा कि प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से यह उससे प्रभावित जरूर है।

सबसे पहले यदि 'वाल्मीकि रामायण' का रचनाकार निर्धारित करना पड तो वहां भी अनेक कठिनाइयों का शिकार होना पड़ता है। डॉ० भगीरथ मिश्र की पुस्तक 'महाकवि तुलसीदास और युग संदर्भ' से इस तथ्य की पुष्टि होती है कि 'वाल्मीकि-रामायण' के रचनाकार निर्धारण में भी प्राय: विद्वान एकमत नहीं रहे हैं। इनसाइकलोपीडिया-इन्टरनेशनल में 'रामायण' का रचनाकाल सातवीं-आठवीं शताब्दी स्वीकार किया गया है। जबकि चैम्बर्स इनसाइकलोपीडिया में इसका रचनाकाल चौथी शताब्दी का माना गया है। इसके अतिरिक्त डॉ० कीथ इसे चौथी शताब्दी ई०पू० की रचना मानते हैं, तो डॉ० विन्टरनिट्स तीसरी शताब्दी की। कोई भी निष्कर्ष निकालने से पहले इस तथ्य पर ध्यान देना आवश्यक है कि यदि बुद्ध के बाद 'रामायण' लिखा जाता तो क्या यह संभव नहीं था कि उसमें प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से उसकी कुछ बातों का समावेश हो जाता, क्योंकि जो कवि राम के शील, शक्ति और सौन्दर्य पर मुग्ध हो सकता है, वही बुद्ध के करुणामय चरित्र से अप्रभावित रहे, असंभव है। यही नहीं, इसके विपरीत 'त्रिपिटक' में रामकथा के प्रसंगों का उल्लेख है। अत: डॉ० भगीरथ मिश्र के शब्दों में यह स्वीकार करना होगा कि 'वाल्मीकि रामायण' ईसा पूर्व ग्यारहवीं-बारहवीं के आसपास लिखी गई...।

'वाल्मीकि रामायण' के तीन पाठ मिलते हैं- दाक्षिणात्यपाठ, गौड़ीयपाठ, पश्चिमोत्तरीयपाठ। इन पाठों में वैषम्य कम है, साम्य अधिक। रामकथा का आदिग्रन्थ होते हुए भी यह रामकथा को विशद्, व्यवस्थित और सुन्दर रूप में प्रस्तुत करने में सक्षम है। वाल्मीकि का मानवतावादी दृष्टिकोण और सामाजिक यथार्थ के प्रति उनकी ललक इस बात का प्रमाण है कि वह मनुष्य की सत्ता और उसकी महत्ता को किस हद तक स्वीकार करते थे। कलाकार सिर्फ परम्परा का अनुकर्ता ही नहीं होता, बल्कि परम्परा का निर्माता भी होता है। यही कारण है कि वाल्मीकि ने पूर्व युग की प्रचलित रामकथा को आधार बनाकर भी उसमें युगानुरूप एक नया मोड़ दिया, जिसके सम्बन्ध में डॉ० रामविलास शर्मा जैसे प्रगतिशील समीक्षक का मत है कि ''वाल्मीकि उस काव्य परम्परा को जन्म दे रहे थे जो देवोपासक नहीं, बड़ी गहराई से मानवतावादी है। उनके काव्य के आरम्भ में किसी देवता की वन्दना नहों है। वह घोषित करते हैं कि यह काव्य द्विजों के लिए ही नहीं, शूद्रों के लिए भी है। उनके चरितनायक राम अपने मनुष्य होने की सगर्व घोषणा करते हैं। सीता को रावण हर ले गया, यह भाग्य की बात थी, दैव सम्पादित दोष था, उसे राम ने मनष्य होकर दूर कर दिया है। व्यास धर्म के लिए कहते हैं कि उसका तत्त्व गुफ़ा में छिपा हुआ है, सार तत्त्व यह है कि संसार में मनुष्य से बढकर और कुछ नहीं है।''

कालक्रम की दृष्टि से 'महाभारत' दूसरा ग्रन्थ है, जिसमें रामकथा को पर्याप्त विस्तार मिला है। 'रामायण' और 'महाभारत' में कौन किसके परवर्ती हैं इसमें काफी मतभेद हैं। इस संदर्भ में मैं दो-एक उदाहरण देना चाहूँगा- 'रामायण' में 'महाभारत' की कोई भी कथा वर्णित नहीं है, जबकि 'महाभारत' में 704 श्लोकों में रामोपाख्यान का वर्णन हुआ है। यही नहीं 'महाभारत' के स्वर्गारोहण पर्व के छठे अध्याय में 'रामायण' का उल्लेख इस प्रकार मिलता है-

''वेदे रामायणे पुण्ये भारते भारतवर्ष भे
आदौचान्तेय मध्येच हरिः सर्वत्र गीयते।।''

यही सही है कि रामकथा के इस मोड़ पर इसमें युगानुकूल परिवर्तन भी आया, जैसे- सीता जनक की औरस पुत्री हैं, गुह आदि का उल्लेख नहीं है, कैकई को एक ही वर मिला था, लक्ष्मण को शक्ति नहीं लगती, अतः हनुमान औषधि भी नहीं लाते। सीता की अग्नि परीक्षा भो नहीं होती, आदि-आदि। कहने का तात्पर्य केवल यह कि रामकथा के विकास में यह छिटपुट परिवर्तन परम्परा विरोधी नहीं है बल्कि स्वाभाविक ही है और इससे रामकथा का 'महाभारत' से पूर्व होना स्वयं सिद्ध है। 'महाभारत' के बाद रामकथा क स्रोत ऐतिहासिकता से भिन्न धार्मिक, पौराणिक स्रोत से प्राप्त होते हैं, जिनमें अगस्त्य संहिता, कलिराघव वृहदराघव, राधबीच संहिता, रामपूर्वतापनीय उपनिषद् आदि प्रमुख हैं। पुराणों में विष्णुपुराण, वायुपुराण, भागवतपुराण आदि तथा अनेक उपपुराण प्रसिद्ध हैं।

संस्कृत काव्यग्रन्थों में रामकाव्य की परम्परा 'वाल्मीकि रामायण' पर ही आधारित रही है इस तथ्य की ओर सर्वप्रथम डॉ० कामिल बुल्के का ध्यान आकृष्ट हुआ था। प्राचीन महाकाव्यों में कथानक के दृष्टिकोण से कोई भी महत्त्वपूर्ण परिवर्तन नहीं मिलता। संस्कृत के जिस महाकाव्य में सर्वप्रथम राम का उल्लेख मिलता है वह है महाकवि कालिदास का 'रघुवंश'। इसमें राम के चरित्र का वर्णन तो है ही बल्कि सम्पूर्ण कथा भी रघुकुल के आसपास घूमती जान पड़ती है। इसमें यद्यपि अलौकिक घटनाओं का मिश्रण है पर सम्पूर्ण कथा वाल्मीकि रामायण से ही प्रभावित जान पड़ती है। छठी शताब्दी में ही प्रवरसेन की प्राकृत रचना 'रावणवहो' नाम से प्राप्त होती है जिसमें राम-रावण युद्ध को अधिक प्रधानता मिली है। इस पर 'वाल्मोकि रामायण' तथा 'पउम चरिउ' का प्रभाव स्पष्ट ही परिलक्षित होता है। इसी शताब्दी के आसपास रामचरित सम्बन्धी दूसरी कृति 'भट्टिकाव्य' अथवा 'रावण-वध' नाम से प्राप्त होती है। इसी शताब्दी के उत्तरार्ध में रामकथा के विकास में गुणात्मक परिवर्तन होता है और उसमें श्रृंगार का प्रवेश होता है, जिसका आरम्भिक प्रयास कुमारदासकृत 'जानकी-हरण' में मिल जाता है। नौवीं शताब्दी में लिखित 'रामचरित' इस परम्परा की अगली कड़ी है।

ग्यारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में कवि क्षेमेन्द्र द्वारा रामायण के संक्षिप्त कथानक पर आधारित ग्रन्थ 'रामायण-मञ्जरी' मिलता है, जिसमें रावण की तपस्या, वर प्राप्ति तथा सीता को पुत्री रूप में ग्रहण करने की आकांक्षाओं का वर्णन मूल कथानक वाल्मीकि रामायण से ही प्रभावित है। बाणभट्टकृत 'रघुनाथचरित' नामक तीस सर्गों में लिखा गया ग्रन्थ पन्द्रहवीं शताब्दी की अनमोल कृति है, जिसमें राम के चरित्र का विस्तार से वर्णन हुआ है। इसके अतिरिक्त सतरहवीं शताब्दी में चक्र कवि कृत 'जानकी-परिणय' है, जिसमें राम और सीता के विवाह का विस्तृत वर्णन लगभग आठ सर्गों में किया गया है।

संस्कृत की इस काव्य परम्परा से भिन्न नाट्य-साहित्य में भी रामकथा को महत्त्वपूर्ण स्थान मिला है, जिनमें सम्पूर्ण कथानक के किसी भी मार्मिक प्रसंग को लेकर संवाद-शैली में रामकथा का वर्णन किया गया है। कालक्रम की दृष्टि से भास प्रणीत 'प्रतिभा' और 'अभिषेक' ऐसे ही नाटक हैं, जिनमें बाली-वध से लेकर राम के राज्याभिषेक तक की महत्त्वपूर्ण घटनाओं का वर्णन हुआ है। प्रकारान्तर में भवभूति का 'उत्तररामचरित' अत्यन्त प्रसिद्ध और महत्त्वपूर्ण नाटक है, जिसमें नाटककार सीता के वनवास का अत्यन्त मार्मिक वर्णन करता है। कथा 'वाल्मीकि रामायण' से प्रभावित होते हुए भी अपना स्वतन्त्र अस्तित्व रखती है। सबसे बड़ी बात इस नाटक की यह है कि इसका अन्त ग्रीक शैली की तरह दुखान्त न होकर सुखान्त है। भवभूति के पश्चात् बारहवीं-तेरहवीं शताब्दी तक रामकथा के विकास में कोई महत्त्वपूर्ण परिवर्तन नहीं मिलता। जयदेवकृत 'प्रसन्नराघव' नाटक को इस दृष्टि से मील का पत्थर माना जा सकता है।

सोलहवीं शताब्दी में हिन्दी-साहित्य के रजत फलक पर तुलसी का आविर्भाव भारतीय इतिहास की वह अविस्मरणीय घटना है, जिसे भारतवर्ष का इतिहास चाहकर भी नहीं भुला पाता और हिन्दी-साहित्य इससे प्रभावित होकर एक नई प्रेरणा ग्रहण करता है। भारतीय इतिहास के मध्यकाल को यदि दो भागो में बांटा जाए- हिन्दूकाल और मुस्लिमकाल के रूप में, तो हम पाएंगे कि हर काल की संक्रमणकालीन स्थितियों के पश्चात् एक महाकाव्य की रचना हुई और भारतीय लोकमानस को उसी प्रकार शान्ति मिली जिस तरह सागर की लहर को किनारे से टकराकर मिलती है। हिन्दू काल में भी विजातियों के आक्रमण तथा बाह्य संकटों के बाद गुप्तों का साम्राज्य पुष्पित एवं पल्लवित हुआ था। साहित्य में जिसकी पूर्णाहुति कालिदास के 'रघुवंश' से हुई। मुस्लिमकाल में भी मंगोलों, तुर्कों, अरबों आदि के आक्रमण के पश्चात् मुग़ल सम्राट अकबर का साम्राज्य स्थापित हुआ और 'मानस' की रचना भी सम्पन्न हुई। कहने का तात्पर्य है कि तुलसी ने मुस्लिम मध्यकाल में हिन्दू मध्यकाल के स्वप्नों को प्रस्तुत किया है तथा हिन्दू मध्यकाल के आदर्शों को मुस्लिम मध्यकाल के हिन्दू जन-जीवन की तुलना में परखा भी है। स्वीकार करना होगा कि तुलसी ने,

''अपने युग का मिथकीयकरण या पौराणीकरण किया है तथा मिथक युग का मध्यकालीनीकरण।'' मर्यादाप्रिय तुलसी ने तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक एवं धार्मिक विकृतियां को दृष्टिगत रखकर एक आदर्श समाज याने प्लेटो के आदर्श गणराज्य की तरह रामराजय की परिकल्पना की जो परिष्कृत वर्णाश्रम धर्म-व्यवस्था पर आधारित थी। डॉ० रामविलास शर्मा के शब्दों में, ''भारत की बहुसंख्यक पीड़ित किसान जनता की वेदना-सुखी जीवन के लिए उसकी अदम्य आकांक्षा, सामाजिक परिवर्तन के लिए संघर्ष करने की उसकी क्षमता, भारतीय साहित्य में, सर्वाधिक तुलसीदास के काव्य में अभिव्यक्त हुई। उनके सामाजिक विचारों को जानने के लिए 'रामचरितमानस' के साथ 'कवितावली', 'गीतावली' और 'विनयपत्रिका' को हमेशा मिलाकर पढ़ना चाहिए।''

तुलसी का परवर्ती काल भारत के राजनीतिक इतिहास में मुगल साम्राज्य के चरमोत्कर्ष का काल था यह उसकी अवनति, ह्रास एवं विनाश का युग है। ललित कलाओं की दृष्टि से शाहजहाँ के काल को यदि मध्यकालीन इतिहास का स्वर्ण युग माना जाए तो शायद अतिशयोक्ति न होगी। इसी समय ललित कला अपने यौवन पर थी।जिसकी पूर्णाहुति ताजमहल में हुई। वर्नियर, टेवनिर्यर आदि विदेशी यात्री भी शाहजहाँ के दरबारी ऐश्वर्य को देखकर स्तब्ध रह गए थे।

तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों के उल्लेख करने का मेरा यहाँ सार्थक उद्देश्य है कि काव्य के गढ़ यानि राजसभाएँ, दरबार आदि में भी चमत्कार एवं अलंकरण की प्रवृत्ति पर विशेष बल दिया जाने लगा था, जिसको लक्ष्य करक ही मध्यकालीन साहित्य के गहन अनुसंधित्सु डॉ० जयभगवान गोयल ने लिखा है कि, ''रीतिकालीन ब्रजभाषा साहित्य का वास्तविक स्वरूप हिन्दी-भाषी-प्रदेश में ही स्थिर हुआ था और इस साहित्य में चमत्कारिता का विशेष महत्त्व था।'' कहने का तात्पर्य यह है कि रामकथा के स्वरूप और विकास में भी यहाँ से एक स्पष्ट मोड़ परिलक्षित होता है।

रामकाव्य की परम्परा में रीतिकाल में जो ग्रन्थ लिखे गए उनमें प्राणचन्द चौहान कृत 'महारामायण' प्रमुख है। रामकाव्य परम्परा में इसका योगदान इसलिए भी महत्त्वपूर्ण है कि प्रस्तुत ग्रन्थ में संवाद-शैली का आश्रय लेकर राम के परम्परागत निगुर्ण-सगुण रूप का ध्यान करते हुए उन्हें आदि पुरुष स्वीकार किया गया है। इसी तरह संस्कृत के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'हनुमन्नाटक' के आधार पर हृदयराम तथा केशवदास ने क्रमशः दो काव्य लिखे। केशवकृत 'रामचन्द्रिका' राम के जीवन को आधार बनाकर लिखा गया एक विशाल महाकाव्य है। उसी तरह हृदयराम ने भो एक नाट्य-काव्य की रचना सन् 1623 ई० में की थी। यह कृतियां 'हनुमन्नाटक' पर आधारित होते हुए भी उसका भाषानुवाद मात्र नहीं है। इसी ई० में रामचरित सम्बन्धी अन्य ग्रन्थ मूलकदासकृत 'रामावतार लीला' है, जिसकी काव्य भाषा अत्यन्त सरल, प्रवाहमयी एवं व्यावहारिक है। संवत् 1675 के आसपास ही माधवदास चारण ने 'गुणरायरासो' तथा इसी के लगभग लालदास ने 'अवध विलास' लिखा। सेनापति के दो ग्रन्थ माने जाते हैं- 'कवित रत्नाकर' एवं 'काव्यकल्पद्रुम', जिनमें से प्रथम में रामकथा का कवि ने कतिपय सर्गों में वर्णन किया है। 'कवित रत्नाकर' की चौथी तरंग 'रामायण वर्णन' और पाँचवीं तरंग 'राम रसायन वर्णन' मं रामकथा को छन्दोबद्ध किया गया है। सेनापति का काव्य प्रसाद एवं माधुर्य आदि गुणों से पूरित है। उनकी भाषा भावपूर्ण एवं प्रभावात्मक है, उक्तियों में सर्वत्र नवीन सूझ के दर्शन होते हैं।

हिन्दी साहित्य के रीतिकाल के पश्चात जब रामकथा आधुनिक युग में पदार्पण करती है तो वह अपने साथ युगीन समस्याओं एवं जटिलताओं को लेकर हमारे समक्ष उपस्थित होती है। पौराणिक एवं ऐतिहासिक कथानक होने के बावजूद भी राम कथा भारतेन्दु युग से लेकर आज तक वर्तमान सन्दर्भ में भारतीय जनमानस को प्रेरित करती आई है। भारतेन्दु युग में सर्वप्रथम भारतेन्दु जी द्वारा प्रणीत 'दशरथ-विलाप' नामक रामकथा सम्बन्धी काव्यकृति प्राप्त होती है। डॉ. परमलाल गुप्त के अनुसार यह खड़ी बोली की प्रथम कविता भी मानी जाती है। इसके बाद ब्रदी नारायण चौधरी ने 'प्रयाग रामागमन' नामक कविता लिखी, जिसकी भाषा ब्रज है। सन् 1885 ई. में लीला सीता राम ने 'रघुवंश का पद्यानुवाद' किया। जगन्नाथ प्रसाद भानु कृत 'नव पंचामृत रामायण' और राधाकृष्णदास कृत 'रामचरित मानस' नामक कृतियां भी इसी समय लिखी गइ। बालमुकंद गुप्त द्वारा रचित 'रामस्तोत्र' मिलते हैं। सुधाकर द्विवेदी ने 'विनय-पत्रिका' के पदों का संस्कृत में अनुवाद किया। इनके अतिरिक्त मदनभट्ट द्वारा रचित 'रामरत्नाकर', राजा फतेसिंह वर्मा द्वारा रचित 'रामचन्द्रोदय', शिवप्रसाद की 'रामराज्याभिषेक' आदि कृतियां उपलब्ध होती हैं जो केवल परम्परा का पालन मात्र करती हैं, साहित्यिक नूतनता का इनमें अभाव है।

आधुनिक काल में प्रथम रचना अमरसिंह कृत 'अमर रामायण' है। इस की रचना सन् 1884 में हुई थी। इसके बाद कालिदास कृत 'रामायण' आती है जो सन् 1931 ई. में की रचना है। इसी काल की तीसरी एवं प्रमुख रचना दिलशाद कृत 'पंजाबी-रामायण' है। इसके पश्चात कवि चक्रधारी बेजर कृत 'सुन्दर रामायण' एवं 1995 ई. में ब्रजलाल शास्त्री रचित 'रामगीत' कृतियां हैं।

रामकथा का विकास केवल भारत में ही नहीं बल्कि विदेशों में भी हुआ। भारत की लगभग सभी भाषाओं और बोलियों में रामकाव्य लिखे गए हैं। विदेशों में रामकथा एशिया विशेषकर दक्षिणी पूर्वी देशों में तेजी से लोकप्रिय हुई। इंडोनेशिया में 'वाल्मीकि-रामायण' पर आधारित कवि योगीश्वर ने 'जावा रामायण' के रचना की। यह रचना तुलसी पूर्व 11वीं शताब्दी की रचना है। मलेशिया में 'हिकायत सेरोराम' का वोदाकिचन ऑक्सफोर्ड संस्करण 1633 ई. में प्राप्त होता है। 17वीं शताब्दी में ही कंबोड़िया में 'रियमकेर' तथा म्यांमार में 'रामवत्थु' नामक रामकथा लिखी गई। 18वीं शताब्दी में थाई में रामकथा 'रामकिएन' अर्थात रामकीति तथा 19वीं शताब्दी में लाओस में 'फ्रलक-फ्रलाम' नामक रामकथा की रचना हुई। रूस में रामकथा 19वीं शताब्दी में पहुंची। इसके अतिरिक्त रामकथा का विकास नेपाल, श्रीलंका, बर्मा में भी हुआ। नि:संदेह रामकथा की यह यात्रा भारत, नेपाल, श्रीलंका, बर्मा, थाईलैण्ड, कम्बोडिया, मलेशिया, इंडोनेशिया आदि देशों में शताब्दियों से अपने जनसमूह मीडिया द्वारा परम्परागत संस्कृति का विस्तार करती चली आ रही है।

## सन्दर्भ :


1. रामचरितमानस, तुलसीदास, काशीराज संस्करण, 1992
2. रामकथा उत्पति और विकास, डॉ. कमिल बुल्के, प्रयाग हिन्दी परिषद, प्रयाग विश्वविद्यालय, 1962
3. रामायण, वाल्मीकि, पंडित पुस्तकालय, काशी, 1951
4. तुलसीपूर्व रामसाहित्य, अमरपाल सिंह, रचना प्रकाशन, इलाहाबाद, 1968
5. भारतीय साहित्य में रामकथा, स० कुमार विमल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1987
6. गोस्वामी तुलसीदास, रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, सं० 1990
7. रामचरितमानस तुलनात्मक अध्ययन, स० नरेन्द्र, राधाकृष्ण प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, 1974
8. हिन्दी के आधुनिक रामकाव्य का अनुशीलन, परमलाल गुप्त, रचना प्रकाशन, इलाहाबाद, 1973
9. रामकाव्यधारा अनुसंधान एवं अनुचिंतन, भगवतीप्रसाद सिंह, लोकभारती प्रकाशन, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद, 1976
10. महाकवि तुलसीदास और युग संदर्भ, भागीरथ मिश्र, साहित्य भवन (प्रा०) लिमिटेड, इलाहाबाद, 1973
11. हिन्दी रामकाव्य विविध आयाम, मदन गुलाटी, जनप्रिय प्रकाशन, विश्वास नगर, नई दिल्ली, 1987
12. हिन्दी रामकाव्य और विष्णुदास की रामकथा, मोहन सिह तोमर, तक्षशिला प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, 1979
13. वाल्मीकि रामायण एवं रामचरितमानस का तुलनात्मक अध्ययन, विद्या मिश्र, विश्वविद्यालय हिन्दी प्रकाशन, लखनऊ, संवत् 2015
14. संस्कृति के चार अध्ययन, रामधारी सिंह दिनकर, उदयांचल, राजेन्द्रनगर, पटना, 1962
15. तुलसी आधुनिक वात्यायन से, डॉ० रमेश कुन्तल मेघ, ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली, 1967
16. इनसाइकलोपीडिया इन्टरनेशन, भाग-15, स० रामचन्द्र वर्मा, लैक्सिकोन पब्लिकेशन्स, न्यूर्याक, 1982
17. चैम्बर्ज इनसाइकलोपीडिया भाग-।।, स० रामचन्द्र वर्मा, जॉर्ज न्यूनज लिमिटेड, लंदन, 1959